समयसार, १९४ गाथा है न? उसकी टीका **परद्रव्य भोगने में आने पर,...** एक ओर ऐसा कहते हैं कि परद्रव्य को स्पर्श नहीं किया जा सकता, भोगा नहीं जा सकता और यहाँ ऐसा कहते हैं, परद्रव्य को (भोगने में आने पर)। क्योंकि पहली गाथा में आया था कि इन्द्रिय से सचेत-अचेतद्रव्यों को भोगते हुए ज्ञानी को द्रव्यकर्म की—जड़ की निर्जरा होती है, जड़द्रव्य की (निर्जरा), यह भाव की (निर्जरा कहते हैं)। यह निमित्त से कथन है। लोग देखते हैं इस अपेक्षा से **'उवभोगमिंदियेहिं'** सचेत, अचेत का भोग, ऐसा कहा। यहाँ ऐसा कहा। वैसे एक ओर कहते हैं कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य के बीच अत्यन्त अभाव है। उसकी पर्याय और पर्याय के बीच भी अत्यन्त अभाव है। किसी की पर्याय किसी को स्पर्श नहीं करती। यह तो तीसरी गाथा में आ गया है, तीसरी गाथा। प्रत्येक द्रव्य अपने गुणों और

पर्याय को, अपने धर्म को चूमता है, उन्हें स्पर्शता-छूता है परन्तु अन्य द्रव्य की किसी भी पर्याय, गुण को दूसरा द्रव्य चूमता नहीं, छूता नहीं, स्पर्शता नहीं। आहाहा! यहाँ निमित्त से कथन है। लोग देखते हैं न, इस अपेक्षा से।

परद्रव्य भोगने में आने पर,... अर्थात् कि परद्रव्य की ओर जरा लक्ष्य जाने पर **उसके निमित्त से जीव का सुखरूप अथवा दुःखरूप भाव...** सम्यग्दृष्टि को भी, धर्मी को भी, चैतन्य गोला भिन्न है, राग से भी भिन्न है, ऐसा भान होने पर भी भावरूपी जरा वेदन नियम से होता है। आहाहा! कर्म के उदय की ओर के जरा झुकाव में सहज सुख-दुःख की कल्पना, आसक्ति की-अस्थिरता की होती है, नियम से होती है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **उत्पन्न होता है क्योंकि वेदन साता और असाता-इन दो प्रकारों का अतिक्रम नहीं...** सुख या दुःख की कल्पना, दोनों में से एक कल्पना तो होती है, कहते हैं। ज्ञानी को भी.. आहाहा! **(अर्थात् वेदन दो प्रकार का ही है-सातारूप और असातारूप)।** साता-असाता है, वह तो संयोग का निमित्त है। कहीं सुख-दुःख की कल्पना में वह नहीं है। उसमें मोह निमित्त है। परन्तु यहाँ साता-असाता की ओर का लक्ष्य है, इसलिए साता-असाता से सुख-दुःख वेदा जाता है, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया? नहीं तो साता-असाता का उदय तो संयोग है, बस! संयोगी उपादान स्वतन्त्र है, परन्तु उसमें निमित्त साता-असाता का है परन्तु भोगने में तो सुख-दुःख की कल्पना, वह कहीं साता-असाता से नहीं है, परन्तु उसकी ओर लक्ष्य जाता है, इसलिए उस प्रकार का सुख-दुःख, साता-असाता से हुआ—ऐसा कहा जाता है। आहाहा!

यह आ गया न? अपने दोपहर में आ गया। कल नहीं आया? पर्यायदृष्टि को बन्द करके पर्याय को (देखना) सर्वथा बन्द करके... पर को देखने की बात तो नहीं परन्तु अपने में जो पाँच पर्याय होती है—नारकी, मनुष्य, देव, तिर्यंच और सिद्ध—इन पाँच पर्यायों को भी देखने की चक्षु बन्द करके। बन्द करके अर्थात्? खुली हुई द्रव्यार्थिकनय द्वारा—ऐसी भाषा है। वापस देखना तो रहता है न? देखना तो वापस पर्याय रहती है। क्या कहा, समझ में आया? पर्याय को, सब पर्याय को देखना बन्द करके और खुले हुए ज्ञान अर्थात् कि जब पर्याय की ओर का झुकाव गया, तब उसे द्रव्य की ओर का उघड़ा हुआ ज्ञान उघड़ा। कारण कि देखना है तो ज्ञान से न? कहीं द्रव्य, द्रव्य से देखना है, ऐसा तो है नहीं। इसीलिए उघड़े

हुए ज्ञान द्वारा। है तो वह पर्याय, परन्तु पर्याय की दृष्टि बन्द करने पर उसे स्वद्रव्य को देखने का ज्ञान खिलता है और उघड़ता है। आहाहा! उस उघड़े हुए ज्ञान द्वारा देखने पर पाँचों पर्यायें देखने में नहीं आती। एक जीव ही, सब द्रव्य ही दिखायी देता है।

यहाँ कहते हैं कि ज्ञानी को ऐसा दिखता है, तथापि जरा साता-असाता के संयोग के काल में इसका लक्ष्य जरा वहाँ जाता है, इसलिए जरा सुख-दुःख की कल्पना-वेदन जरा होता है, नियम से होता है, ऐसा कहा। बिल्कुल नहीं होता, ऐसा नहीं है। आहाहा! जैसे परद्रव्य को तो बिल्कुल स्पर्श नहीं करता, इसी तरह यह सुख-दुःख की कल्पना ज्ञानी को पर्याय में बिल्कुल होती ही नहीं, ऐसा नहीं है। परन्तु वह होती है, वह... आहाहा! वेदन में आती है। है?

तब मिथ्यादृष्टि को,... राग के ऊपर प्रेम होने से भगवान अन्दर आनन्द का गोला भिन्न पड़ा है, उसका उसे प्रेम का अभाव होने से। आहाहा! **रागादिभावों के सद्भाव से...** अज्ञानी को तो राग हुए बिना रहता ही नहीं, कहते हैं। सुख-दुःख की जो कल्पना हुई, उसमें प्रेम हुए बिना रहता ही नहीं। आहाहा! कल्पना तो दोनों को हुई, चन्दुभाई! दोनों को हुई है परन्तु मिथ्यादृष्टि अर्थात् द्रव्यस्वभाव को नहीं देखनेवाला, पर्याय को ही देखनेवाला, उसे राग-द्वेष के कारण से उस पर्याय में सुख-दुःख का वेदन जो हुआ, उसके बन्ध का निमित्त होता है। उसे राग-द्वेष के कारण बन्ध का निमित्त होता है, वह चीज़ नहीं। वेदन में आया, उसमें राग-द्वेष के कारण वह बन्ध (का निमित्त हुआ)। क्योंकि यदि वह चीज़ बन्ध का कारण होवे तो समकिती को भी होना चाहिए। समझ में आया? सुमनभाई! ऐसा सूक्ष्म है। स्वरूप का जहाँ, शुद्ध चैतन्य पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, वह दृष्टि में आया नहीं, विद्यमान जयवन्त चीज़, विद्यमान जयवन्त चीज़ दृष्टि में आयी नहीं और अविद्यमान रागादिभाव वे दृष्टि में आने पर राग-द्वेष के कारण से बन्ध का कारण होता है। समझ में आया? आहाहा!

रागादिभावों के सद्भाव से बन्ध का निमित्त होकर... निमित्त अर्थात् कारण। **(वह भाव) निर्जरा को प्राप्त होता हुआ...** अर्थात्? कि जो कुछ सुख-दुःख की कल्पना हुई, वह तो नाश होगी ही। अज्ञानी को भी नाश होगी और ज्ञानी को भी नाश होगी। आहाहा! क्योंकि एक समय की क्षणिक पर्याय है, इसलिए नाश तो होगी ही। जड़ का

नहीं, हों! वेदन की पर्याय का। आहाहा! बन्ध का कारण होकर निर्जरित होने पर भी अर्थात् कि यह राग (का) जरा वेदन आया, वह खिर गया, खिर गया तो भी **निर्जरित न होता हुआ,...** क्योंकि वहाँ राग का प्रेम है, उसने भगवान को देखा नहीं, इसलिए राग का प्रेम छूटता नहीं। उस राग के प्रेम के कारण वह वेदन है, वह खिर जाता है तो भी उसे निर्जरित हुआ, ऐसा नहीं कहा जाता, उसे बन्धन हुआ कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

(वास्तव में) निर्जरित न होता हुआ,... आहाहा! निर्जरित होने पर भी नहीं निर्जरित होता हुआ। आहाहा! वह पर्याय में आता है, वह पर्याय तो नाश होगी ही। जैसे जड़ का उदय आवे और खिर जाएगा; उसी प्रकार यह भी क्षणिक वेदन आकर खिर जाएगा। तो भी राग की एकतारूपी के कारण, निर्जरित होने पर भी उसे निर्जरित हुआ कहने में नहीं आता। आहाहा! ऐसी बातें! **निर्जरा को प्राप्त होता हुआ भी (वास्तव में) निर्जरित न होता हुआ,...** आहाहा! **बन्ध ही होता है;...** 'ही' है। अज्ञानी को वह पर्याय में जरा वेदन आया, वह तो खिर ही जाता है। वह विकृत अवस्था एक समय की कहीं दूसरे समय नहीं रहती। खिर जाने पर भी अज्ञानी को वह निर्जरित नहीं हुआ, क्योंकि उसके प्रति राग था, वह बन्ध का कारण होकर खिरा है। आहाहा! अब ऐसी सूक्ष्म बातें। आज दोपहर का दिन है न? सुना है न? दो-उन्नीस (मिनिट पर) गिरनेवाला है, कहते हैं। लोग चारों ओर घबरा गये। कहाँ गिरेगा.. कहाँ गिरेगा?

यहाँ तो कहते हैं कि जिस समय में जिस क्षेत्र में और उस काल में अज्ञानी की दृष्टि वहाँ राग के ऊपर है, इस वेदन में सुख-दुःख आने पर भी उस राग के कारण निर्जरित हुआ है, वह वेदन था, वह खिर गया, तथापि उसे निर्जरित हुआ नहीं कहा जाता। आहाहा! क्योंकि नया बन्धन करके खिरा है। आहाहा! ऐसी बात है। आज दो बजे है। समाचार तो आयेंगे। वे लोग पाँच-दस मिनिट में कितना दूर है और क्या है? देखते तो होंगे। आहाहा! उसे देखते होंगे वे, परन्तु मेरा नाथ भगवान अन्दर चैतन्य गोला पड़ा है, (उसे) सुना नहीं। आहाहा! विद्यमान जयवन्त चीज़ तो वह है। दोपहर में तो कहा था न? आयेगा दोपहर में।

पर्याय चक्षु को बन्द करके। पर को देखने की बात भी नहीं। आहाहा! पर को देखना बन्द करके, यह तो प्रश्न ही नहीं। आहाहा! प्रवचनसार ११४ गाथा। पर्याय को

देखना बन्द करके। नारकी, तिर्यंच, मनुष्य, देव और सिद्ध। सिद्धपर्याय को भी देखना भी बन्द करके। आहाहा! खुले हुए ज्ञान से। कारण वापस देखना है तो पर्याय से और पर्याय की आँख तो बन्द कर दी, ऐसा कहा। उस पर्याय को देखने की आँख बन्द की परन्तु अपने को देखने की आँख खुल गयी। आहाहा! यह शब्द है न? कल बहुत कहा था। खुले हुए, द्रव्य को देखनेवाले खुले हुए ज्ञान द्वारा। आहाहा! पर्याय को देखने की आँखें बन्द (करके)। पर को देखने की बात ही नहीं की, अरे रे! आहाहा! कि इसका ऐसा शरीर है और इसका ऐसा है और इसका ऐसा-ऐसा है। आहाहा! अपने को दो प्रकार से देखने में जो था, उसमें एक प्रकार का देखने का पर्याय का बन्द करके... आहाहा! पर्याय चक्षु को बन्द करके, खुले हुए द्रव्य के ज्ञान से, द्रव्यार्थिकनय से देखना है, वह ज्ञान खुला है। यहाँ बन्द हुआ है। आहाहा! यह सिद्धान्त तो देखो। आहाहा!

अन्तर में देखने पर... है तो देखने की पर्याय, परन्तु पर्याय, पर्याय को देखती है, उसे बन्द करके पर्याय, द्रव्य को देखती है। आहाहा! इसलिए उसे सब जीव भासित होता है, पाँच पर्यायें नहीं, सिद्ध पर्याय नहीं। आहाहा! वहाँ उसे सब जीव भासित होता है। इस प्रकार यहाँ जीव को नहीं भासनेवाला पर्यायदृष्टि में रहा हुआ... आहाहा! उसे सुख-दुःख का, साता-असाता का वेदन उल्लंघता नहीं, अर्थात् कि हुए बिना रहता नहीं। तथापि वह निर्जरित होने पर भी, हुए बिना रहता नहीं, ऐसे निर्जरित हुए बिना रहता नहीं। आहाहा! वह समय है, वह आकर खिर जाता है, तो भी उसकी दृष्टि में प्रेम, राग की पर्यायबुद्धि पड़ी है। आहाहा! उस राग की बुद्धि के कारण वेदन में आया, खिर गया होने पर भी उस अज्ञानी को खिर नहीं गया। आहाहा! ऐसी बातें हैं। उसे निर्जरित होने पर भी, ऐसा शब्द है न? क्योंकि वह तो पर्याय चाहे जो हो तो एक समय आकर नाश ही हो जाती है। चाहे तो अभव्य हो या भव्य हो, चाहे जो हो। आहाहा! पर्याय में एक समय की विकृत आयी, वह दूसरे समय में कहाँ से रहे? आहाहा! क्या शैली! सन्तों की शैली... आहाहा!

वह निर्जरित होने पर भी वास्तव में **निर्जरित न होता हुआ, बन्ध ही होता है;...** क्यों? रागादि भाव के सद्भाव के कारण। आहाहा! उसे भगवान आत्मा का प्रेम नहीं है। अनाकुल आनन्द का सुखसागर का पानी-जल, सुख के सागर का जल भरा हुआ प्रभु! आहाहा! उसकी नजरें नहीं होने से वेदन में राग और द्वेष किये बिना नहीं रहता, इसलिए

वह वेदन खिर जाने पर भी नया बन्ध करके जाता है, इसलिए (कहते हैं कि) वह खिरा नहीं है। आहाहा! आहाहा! ऐसा मार्ग है।

किन्तु... अब सम्यग्दृष्टि लेते हैं। वेदन तो दोनों को है, कहते हैं। आहाहा! पर्याय में साता-असाता का निमित्त है, परन्तु उस ओर लक्ष्य गया, इसलिए साता-असाता कही। नहीं तो साता-असाता कहीं सुख-दुःख (दे) ? साता-असाता तो संयोग में निमित्त है परन्तु स्वाभाविक दृष्टि नहीं है, इसलिए संयोग पर उसका लक्ष्य जाता है, इसलिए साता-असाता वेदनीय से सुख-दुःख हुआ, ऐसा कहकर, उस सुख-दुःख को निर्जरित होने पर भी, अज्ञानी की दृष्टि वहाँ है, इसलिए नया बन्ध करके जाता है; इसलिए निर्जरित नहीं हुआ। ज्ञानी को... आहाहा! पर्याय में सुख-दुःख की आसक्ति की अपेक्षा से... अभी वीतरागता हुई नहीं... आहाहा! इसलिए कहते हैं पर्याय में आवे, इतना अस्तित्व सिद्ध किया। आहा! तथापि उस पर्याय में ऐसा आने पर भी **सम्यग्दृष्टि के, रागादिभावों के अभाव से...** उसे उस सुख-दुःख के प्रति प्रेम नहीं है। आनन्द का प्रेम है और आनन्द की रुचि में उस वेदन के ऊपर की बुद्धि ही उठ गयी है। पर में सुखबुद्धि है, वह बुद्धि नाश हो गयी है और स्व में सुख है, वह बुद्धि उत्पन्न हुई है। आहाहा! इतनी सब शर्तें हैं। इसलिए **सम्यग्दृष्टि के, रागादिभावों के अभाव से...** उसे राग है ही नहीं। वेदन हुआ है परन्तु उसके प्रति राग ही है नहीं। आहाहा!

दृष्टि में भगवान वर्तता है। पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, जयवन्त चीज़। जयवन्त चीज़ तीनों काल में जयवन्त वर्तती है। आहाहा! उसका तो तीनों काल में जय ही है, कहते हैं। आहाहा! दृष्टि करे उसे। आहाहा! **सम्यग्दृष्टि के, रागादिभावों के अभाव से...** उसका वेदन आने पर भी, उसके प्रति आदर नहीं है। आहाहा! आदर तो यहाँ भगवान के ऊपर है। स्वीकार नहीं। आहाहा! जिसने प्रभु को स्वीकार किया है, उसे सुख-दुःख के वेदन का स्वीकार ही नहीं है, कहते हैं। आहाहा! इसलिए उसे **रागादिभावों के अभाव से बन्ध का निमित्त हुए बिना,...** नया बन्ध हुए बिना **केवलमात्र निर्जरित होने से...** 'केवल' और 'ही' है। ऐसा कि थोड़ा सा भी बन्धन हो, वह इसमें नहीं लिया है। दूसरी जगह लेते हैं। ज्ञानी को जितने अंश में कमजोरी है, उतने अंश में अभी बन्धन है। जघन्य ज्ञानरूप परिणमन है, दृष्टि में जघन्यपना नहीं है। दृष्टि में तो पूर्णानन्द का नाथ आता है, परन्तु परिणमन में जघन्यता है, हीनता है, उतना उसे बन्ध का कारण होता है। आहाहा!

आस्रव में आया न ? आस्रव (अधिकार की) १७१ गाथा। जघन्य परिणमन है। आहाहा! यहाँ यह बात नहीं लेनी है।

यहाँ तो **बन्ध का निमित्त हुए बिना, केवलमात्र...** शब्द है। है ? है, देखो संस्कृत **'सन्निर्जरैव स्यात्'** संस्कृत (में) अन्तिम शब्द है। अमृतचन्द्राचार्य। उसमें ऐसा है— **'अनिर्जरणव' 'सन् बन्ध एव स्यात्' 'एव'**—'ही' है। यहाँ भी कहते हैं कि **'सन्निर्जरैव स्यात्'** निर्जरा ही है, निर्जरा ही है। आहाहा! संस्कृत का अन्तिम शब्द है। आहाहा! यह भगवान की वाणी है। सन्तों की साक्षी से जगत को प्रसिद्ध करते हैं। आहाहा! दिगम्बर मुनि... आहाहा! यह कहने के समय इनका भाव कैसा है! आहाहा! है भले विकल्प। टीका तो उनकी क्रिया है ही नहीं। आहाहा! कहते हैं कि विकल्प के प्रति भी जिन्हें प्रेम उड़ गया है। आहाहा! राग का राग नहीं, अरागी ऐसे भगवान का प्रेम है। आहाहा! इसलिए (कहते हैं कि) **केवलमात्र निर्जरित होने से...** आहाहा! केवल निर्जरा ही होने से **(वास्तव में) निर्जरित होता हुआ, निर्जरा ही होती है।** देखा ? **निर्जरा ही होती है।** आहाहा!

उसमें भी यह है **'निमित्तमभूत्वा केवलमेव निर्जीर्यमाणो निर्जीर्णः सन्निर्जरैव स्यात्।'** दोनों में **'एव'** शब्द है। यह संस्कृत टीका। ऐसा उपदेश। वह तो यह शस्त्र पड़े, वह कब पडेगा, वह तो उस समय का होगा। यह तो कहते हैं कि जहाँ अन्दर में चोट पड़ी... आहाहा! राग को देखने की आँखें जहाँ देखने की बन्द कर दीं। आहाहा! और खुले हुए ज्ञान द्वारा द्रव्य को देखा। आहाहा! है तो वह खुला हुआ ज्ञान भी पर्याय, परन्तु पर्याय को देखने की आँख बन्द करके, पर्याय द्वारा द्रव्य को देखा। आहाहा! उसे तो अकेली निर्जरा ही है, कहते हैं। वेदन आया जरा, तो भी निर्जरा ही है। आहाहा! समझ में आया ? यह तो वीतरागी सन्तों की वाणी है। अकेली वीतरागता घोली है। आहाहा!

भावार्थ : परद्रव्य भोगने में आने पर,... मूल आया था न, टीका में आया था न ? टीका में ही है न ? **'उपभुज्यमाने सति हि परद्रव्ये'** आहाहा! (टीका का) पहला शब्द है। यह निमित्त से कथन है। परद्रव्य को तो कोई आत्मा स्पर्श भी नहीं करता। अज्ञानी या ज्ञानी। आहा! परन्तु उसका लक्ष्य वहाँ जाता है, इसलिए परद्रव्य को भोगता है, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! परद्रव्य की ओर लक्ष्य जाने पर अपने भाव का वेदन आता है,

इसलिए परद्रव्य को भोगता है, ऐसा कहा। आहाहा! बाकी तो परद्रव्य को देखने की बात भी बन्द कर दी। दोपहर को तो बात आयी थी न? गाथा बाकी है न?

पर्यायनय की आँख बन्द करके। पर को देखने की आँख की बात ही नहीं है। आहाहा! अपनी पर्याय को देखने की जो बात है, अरे! भले सिद्धपर्याय हो, साधक को नहीं है परन्तु सिद्धपर्याय होगी, उसका भी लक्ष्य अभी नहीं है। पर्याय का लक्ष्य छोड़कर... आहाहा! द्रव्य को खुले हुए ज्ञान द्वारा देखने पर। आहाहा! पर्यायचक्षु बन्द हुई है, इसलिए द्रव्य को देखने का ज्ञान खुला है। आहाहा! समझ में आया? इसलिए परद्रव्य को भोगने पर, ऐसा निमित्त से कथन है। परद्रव्य के ऊपर लक्ष्य जाता है, इसलिए परद्रव्य को भोगता है, ऐसा कहने में आया है। आहाहा! बाकी परद्रव्य की पर्याय और स्वद्रव्य की पर्याय के बीच तो महा (किला है)।

नियमसार में आता है। एक बार रात्रि में कहा था। आत्मा निर्भय है। 'निःदण्डो, निःदन्दो' आता है। उसमें ऐसा आता है कि आत्मा महादुर्ग-किला है। जिसमें पर्याय का प्रवेश नहीं। ऐसा जो भगवान दुर्ग / किला, वह अभय, निर्भय है। आहाहा! भगवान आत्मा निर्भय है। नियमसार में (४३वीं गाथा में) आता है। गाथाओं में आता है न 'णिद्दंडो णिद्दंद्दो णिण्भयो' आहाहा! वह दुर्ग / किला, जिसमें पर्याय को प्रवेश नहीं तो राग की तो बात ही क्या करना? कहते हैं। आहाहा! ऐसा यह भगवान निर्भय प्रभु है। निर्जरा का जो निःशंक और निर्भयता वह पर्याय में है, यह वस्तु में है। क्या कहा? समझ में आया? निर्जरा में जो निःशंक कहा, उसका अर्थ निर्भय कहा, वह पर्याय में है। यह तो वस्तु ही निर्भय है तो पर्याय में निर्भयता आती है। आहाहा! समझ में आया?

परद्रव्य भोगने में आने पर, कर्मोदय के निमित्त से जीव के सुखरूप अथवा दुःखरूप भाव नियम से उत्पन्न होता है। कितना यहाँ रखा? साता-असाता का नहीं रखा। **नियम से उत्पन्न होता है।** मिथ्यादृष्टि या सम्यग्दृष्टि को, दोनों को। दोनों को। आहाहा! **मिथ्यादृष्टि के रागादि के कारण...** पर्यायबुद्धि में राग की रुचि के प्रेम में पड़ा, **वह भाव आगामी बन्ध करके निर्जरित होता है...** उस वेदन का भाव नवीन बन्ध करके खिरता है। आहाहा! इसलिए वास्तव में खिरता है, ऐसा नहीं कहा जाता। निर्जरित होने पर भी निर्जरा नहीं कहा जाता। आहाहा! **इसलिए उसे निर्जरित नहीं कहा जा सकता;...**

है ? **आगामी बन्ध करके निर्जरित होता है, इसलिए उसे निर्जरित नहीं कहा जा सकता; अतः मिथ्यादृष्टि को परद्रव्य के भोगते हुए बन्ध ही होता है।** आहाहा! परद्रव्य भोगने पर अर्थात् परद्रव्य के लक्ष्य में आने पर, उस भाव को भोगने पर बन्ध ही होता है, ऐसा। ऐसी सूक्ष्म बातें। क्रियाकाण्ड के रसिया को एकान्त लगता है, चारों ओर चिल्लाहट मचाता है। सोनगढ़ एकान्त है, एकान्त है, एकान्त है। मचावे, शोर मचावे तो उसके पास रहा। आहाहा!

मुमुक्षु : घर में विवाह हो, उसे खबर न हो तो चिल्लाहट मचावे।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसकी पर्याय का भाषा का वहाँ परिणमन हो। उस समय की पर्याय ही परिणमन की हो, उसमें वह क्या करे ? वह तो अपने भाव को करे, भाषा तो (क्या करे) ? आहाहा! ऐसी बात कठिन पड़ती है। इसकी अपेक्षा तो व्रत करना और तपस्या करना, अपवास करना, भक्ति करना, मन्दिर बनाना, पाँच-पचास लाख का दान देना एकसाथ सब (वह सब सरल लगता है)।

एक व्यक्ति का पत्र आया है। ट्रस्ट के लिये पत्र है। गाँव में हमारा एक ही दिगम्बर का घर है, श्वेताम्बर के पैतीस घर हैं। मन्दिर नहीं है। चैत्यालय बनाओ। सोनगढ़ के ट्रस्ट की ओर से मदद मिलना चाहिए। कहो, अब पैसे की मदद माँगे। नीमच है, नीमच गाँव। कल आया है। कहो, अब यहाँ से पैसे की मदद माँगे। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि राग का शुभभाव, उसकी भी मदद चाहे... आहाहा! वह कर्मबन्धन को करता है। आहाहा!

मुमुक्षु : सोनगढ़ धर्म का कल्पवृक्ष है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसे देनेवाले रामजीभाई के पास पैसे पड़े हैं। अभी तो रामजीभाई प्रमुखरूप से कर्ता-हर्ता हैं न ? इनसे माँगे। आहाहा! नाम है उसमें कुछ, मुख्य व्यक्ति।

मुमुक्षु : सोनगढ़ के पास बहुत पैसा है, ऐसी ख्याति है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात सत्य है। अरे... ! प्रभु! ख्याति, बापू! किसे कहा जाता है ? आहाहा! ख्याति की पर्याय, बापू! उसके सामने देखना नहीं। आहाहा! आज दोपहर को फिर से आयेगा। ११४ गाथा। परद्रव्य को देखने की तो बात ही छोड़, कहते हैं। तुझमें पर्याय और द्रव्य दो हैं, उसमें पर्यायचक्षु बन्द कर दे। बाद में फिर पर्याय को उघाड़ने का कहेंगे। पहले पर्यायचक्षु बन्द करके द्रव्यचक्षु को (खोलकर देख)। बाद में कहेंगे, द्रव्यचक्षु को

बन्द करके पर्याय को देख। अर्थात् क्या ? जो सम्यग्ज्ञान हुआ है, उसके द्वारा पर्याय को देख। आहाहा!

मुमुक्षु : दोनों आँख से तो आत्मा का सारा (सम्पूर्ण) वैभव नजर आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों आँख से तो प्रमाण ज्ञात होता है, वह भी आयेगा। उसमें पर्याय का निषेध नहीं आता, इसलिए प्रमाण, वह पूज्य नहीं है। चन्दुभाई! आता है न ? आहाहा! आयेगा। दोनों आँख से देखना। वह तो ज्ञान कराने को आयेगा। परन्तु पहले द्रव्य का ज्ञान कराया, उसे पर्याय का ज्ञान होता है, वह दोनों को देखे तो उसे प्रमाणज्ञान कहा जाता है, परन्तु जहाँ अभी द्रव्य स्वयं ही क्या है ? आहाहा! स्व को जाने बिना पर को जानने का विकास उघड़ा ही नहीं होता। आहाहा! स्व को जाने बिना पर को जानने का विकास उघड़ा ही नहीं होता। स्व को जानते हुए पर को जानने का विकास उघड़ा होता है। आहाहा! कठिन बात है, भाई! आहाहा! देखो न, वह दोपहर को गिरनेवाला है, इसलिए लोगों (में) घबराहट... घबराहट (हो गयी है)। यहाँ गाँव में भी कहते हैं, ऐसा हो गया है। भावनगर गिरनेवाला है तो यहाँ आवे तो ? अच्छा खा लो। कहो! खाना हो वह खा लो।

मुमुक्षु : सोनगढ़ में तो दृष्टि का बम फोड़े तो मिथ्यात्व का चूरा हो जाए।

पूज्य गुरुदेवश्री : कोई नयी चीज़ है ही कहाँ बाहर में ? आहाहा! जिसे राग स्पर्श नहीं करता, उसने परद्रव्य को स्पर्श किया, यह बात (कहाँ से होगी) ? अभव्य को भी परद्रव्य स्पर्श नहीं करता। आहाहा! ऐसी चीज़ है। महँगी पड़े परन्तु प्रभु ? (यह) करने से ही छुटकारा है। यह किये बिना भव के भ्रमण का (अन्त नहीं आयेगा)। आहाहा! यह नरक के दुःख... आहाहा! कैसा विषापहार ? हैं ? विषापहार (एक ही भाव) कैसे मुनि ? वादीराज ? वादीराज मुनि को जब शरीर में कुष्ठ (हुआ) है, पश्चात् भगवान की स्तुति करते हैं। प्रभु! मैं जहाँ भूतकाल के दुःखों को स्मरण करता हूँ, वहाँ मुझे चोट लगती है। चन्दुभाई! विषापहार (एकीभाव) स्तुति है न ? आचार्य हैं। शरीर में कुष्ठ हुआ है, बाद में तो सहज ही शरीर बदल जाता है। ऐसा कहते हैं, प्रभु, आहाहा! मैं भूतकाल के नरक और निगोद के दुःखों को जहाँ याद करता हूँ, वहाँ आयुध के... क्या कहलाता है ? आयुध... आयुध...। आयुध की चोट लगती है, प्रभु! उसमें मुझे पर में उत्साह कहाँ से आयेगा ? नरक

की दस हजार वर्ष की स्थिति का एक क्षण का दुःख, यहाँ एक अग्नि, ताप कठोर आवे, वहाँ पंखा लगाओ, हवा करो। अरर! ऐसी तो अनन्त-अनन्तगुनी पीड़ा पहले नरक में (भोगी है)। भाई! अग्नि से सिंक गया और आयुष्य तो टूटता नहीं, आयुष्य पूरा होता नहीं, भाई! ऐसा तूने तैंतीस-तैंतीस सागर निकाले हैं, बापू! वह शीतवेदना...! आहाहा! जिसमें लाख मण का लोहे का गोला, लुहार के जवान लड़के ने घड़-घड़कर मजबूत किया हो, वह सातवीं नरक के नारकी की शीतवेदना में लाख मण का गोला चूरा (हो जाए)। तो भी एक घड़ी में जैसे घी पिघल जाता है (वैसे) पिघल जाता है। आहाहा! अग्नि की भाँति... क्या कहलाता है वह? अग्नि का। फटाका! अग्नि का फटाका में जैसे अग्नि रखे, वैसे वहाँ एक क्षण में लाख मण का लोहे का गोला शीत की वेदना में पिघलकर गल जाता है। प्रभु! तूने तैंतीस सागर अनन्त वहाँ निकाले हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : मुनि ऐसी पर्याय को याद करते होंगे?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें याद करते हैं। स्वयं वैराग्य के लिये (याद करते हैं)। वैराग्य के लिये करते हैं न! आहाहा! हमें कहाँ पर में उत्साह आवे? प्रभु! ऐसा। हम ऐसे दुःख को जहाँ याद करते हैं, वहाँ कोई भी इज्जत, महिमा करे, प्रशंसा करे, हमारा मन वहाँ कहीं जाता नहीं। कहीं खिंचता नहीं, ललचाता नहीं, आहाहा! ऐसा कहते हैं। वे तो वैरागी मुनि सन्त हैं। वह तो जरा राजा को श्रावक से कहा गया कि तुम्हारे गुरु को तो कोढ़ है। ऐसे तुम्हारे गुरु कोढ़ (वाले)? गुरु ऐसे पवित्र कहलाते हैं, उन्हें कोढ़? श्रावक कहता है, महाराज! मेरे गुरु को कोढ़ नहीं है, ऐसा (श्रावक से) बोला गया। आहाहा! उसने गुरु के पास (जाकर) कहा, प्रभु! मुझसे ऐसा बोला गया है, बापू! अच्छा होगा। भगवान का मार्ग है। आहाहा! फिर ऐसी स्तुति शुरु की। प्रभु! आप जहाँ पधारते हो, वहाँ देव आकर आपकी माता की ऐसी स्थिति करता है मानो ऐसे पलंग में सुलाया हो, बैठे हों और आप जिस गाँव में आओ, उस गाँव में सोने के गढ़ और रत्न के कंगूरे होते हैं, प्रभु! और आपकी यह स्तुति करते हैं और इस शरीर में ऐसा रहे, प्रभु! नहीं रह सकता। ऐई! आहाहा! और सहज ही पुण्य का योग, इसलिए बना है।

मुमुक्षु : भगवान मिटाने नहीं आये?

पूज्य गुरुदेवश्री : मुझे तो यह कहना था, उसके दु:ख। यहाँ जरा सी अनुकूलता मिले, (उसमें) ऐसा ललचा जाता है। प्रभु! क्या है तुझे? वहाँ की पीड़ा की बात याद करें, वहाँ कहे—आयुध लगता है, प्रभु! आहाहा! हमें दूसरी बात में अब किस प्रकार सुहायेगा? कहते हैं। आहाहा! ऐसे दु:ख को जहाँ हम याद करते हैं, वहाँ हमें अनुकूलता के ढ़ेर आकर्षित कर जाए और ललचा जाए, (ऐसा कैसे बने)? ऐसा कहते हैं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं **सम्यक्दृष्टि के...** आहाहा! **रागादिक न होने से आगामी बन्ध किये बिना ही वह भाव निर्जरित हो जाता है, इसलिए उसे निर्जरित कहा जा सकता है;...** उसको निर्जरा होने पर भी बन्ध करता है, इसलिए निर्जरा नहीं कही जा सकती। इसे तो निर्जरा कही जा सकती है। वेदन जरा हुआ, वह छूट जाता है। छूटा, वह छूटा है। आहाहा! **सम्यक्दृष्टि के परद्रव्य भोगने में आने पर निर्जरा ही होती है। इस प्रकार सम्यक्दृष्टि के भाव निर्जरा होती है।** लो! पहली गाथा में द्रव्य निर्जरा की (बात) थी, दूसरी में भाव निर्जरा की (बात कही)।

कलश - १३४

अब आगामी गाथाओं की सूचना के रूप में श्लोक कहते हैं:-

(अनुष्टुप्)

तज्ज्ञानस्यैव सामर्थ्यं विरागस्यैव वा किल।
यत्कोऽपि कर्मभि: कर्म भुञ्जानोऽपि न बध्यते।।१३४।।

श्लोकार्थ : [किल] वास्तव में [तत् सामर्थ्यं] वह (आश्चर्यकारक) सामर्थ्य [ज्ञानस्य एव] ज्ञान की ही है [वा] अथवा [विरागस्य एव] विराग की ही है [यत्] कि [क: अपि] कोई (सम्यग्दृष्टि जीव) [कर्म भुञ्जान: अपि] कर्मों को भोगता हुआ भी [कर्मभि: न बध्यते] कर्मों से नहीं बँधता! (वह अज्ञानी को आश्चर्य उत्पन्न करती है और ज्ञानी उसे यथार्थ जानता है।)।।१३४।।

कलश - १३४ पर प्रवचन

१३४ कलश,

तज्ज्ञानस्यैव सामर्थ्यं विरागस्यैव वा किल।
यत्कोऽपि कर्मभिः कर्म भुञ्जानोऽपि न बध्यते।।१३४।।

आहाहा! **वास्तव में वह (आश्चर्यकारक) सामर्थ्य...** [तत् सामर्थ्यं] ऐसा है न? **वह (आश्चर्यकारक) सामर्थ्य...** [ज्ञानस्य एव] आहाहा! वह तो आत्मा का है। आहाहा! चैतन्य भगवान आनन्द का सागर, अकेले सुख के सागर के नीर से भरपूर। उस सागर में पानी भरा है और यहाँ सुख का सागर, सुख भरा है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द के नीर से भरपूर भगवान... आहाहा! उसके ज्ञान का ही यह सब माहात्म्य है। आहाहा! यह सब आत्मा के स्वभाव का माहात्म्य है। **अथवा विराग की ही है...** पर की ओर का वैराग्य। पुण्य और पाप के भाव से विरक्त और स्वभाव में रक्त। अज्ञानी स्वभाव से विरक्त और पुण्य-पाप में रक्त है। दृष्टि गुलाँट खाती है। आहाहा! सम्यग्दृष्टि स्वभाव में रक्त और पुण्य-पाप के दोनों भाव से विरक्त, उसे वैराग्य कहते हैं। बाहर की दुकान, स्त्री, पुत्र छोड़कर बैठा, इसलिए वैरागी है—ऐसा नहीं है। शुभ और अशुभराग से जो वैराग्य करता है, उसमें से रक्तपना छोड़ देता है। आहाहा! उसे ज्ञानी और वैरागी कहने में आता है। आहाहा! ऐसी बात है।

वास्तव में... [तत् सामर्थ्यं] **वह (आश्चर्यकारक) सामर्थ्य ज्ञान को ही है अथवा विराग की ही है...** [कः अपि] **कोई (सम्यग्दृष्टि जीव)...** [कर्म भुञ्जानः अपि] **कर्मों को भोगता हुआ भी...** आहाहा! जनेता को नग्न देखने पर जैसे लज्जित हो जाता है; उसी प्रकार समकिती परवस्तु को भोगने पर लज्जा को प्राप्त हो जाता है। उसकी ओर के आश्रय में लज्जा पा जाता है। अरे रे! यह क्या? आहाहा! सूक्ष्म बात है, प्रभु! मार्ग बहुत सूक्ष्म है। वह नहीं हुआ था? गाँधी। नौआखली देश में नहीं? मुसलमान हिन्दुओं को ऐसा नुकसान करते कि चालीस वर्ष की माँ और बीस वर्ष का लड़का, दोनों को नग्न करके (भिड़ाते)। अरे.. प्रभु! जमीन मार्ग दे तो समा जाएँ। यह क्या करता है? आहाहा! उसी प्रकार धर्मी को

परद्रव्य के प्रति प्रेम ऐसा उड़ गया है। आहाहा! कि जिसके आत्मा के प्रेम के कारण पर से तो पुण्य-पाप के विकल्प से भी जिसे वैराग्य हो गया है। आहाहा! यह गाथा कहेंगे। ज्ञान और वैराग्य का सामर्थ्य कहते हैं न? उसका यह कलश है, वह उपोद्घात है।

कोई (सम्यग्दृष्टि जीव)... [कर्म भुञ्जानः अपि] कर्मों को भोगता हुआ भी कर्मों से नहीं बँधता!... यह 'कर्म' शब्द से जरा राग आता है, तथापि वहाँ राग का प्रेम नहीं है। इसलिए बँधता नहीं है। भाषा कर्म की ली है। **(वह अज्ञानी को आश्चर्य उत्पन्न करती है और ज्ञानी उसे यथार्थ जानता है।)** अज्ञानी को आश्चर्य होता है कि आहाहा! छह खण्ड का राज्य, इतना भोग और कुछ नहीं? और हम महाव्रतधारी, हजारों रानियाँ छोड़कर बैठे, तो भी हमें अभी वैराग्य भी नहीं? बापू! यह वस्तु ऐसी है। शुभ-अशुभभाव से हट जाने पर, स्वभाव में-अस्तित्व में जाने से शुभाशुभभाव में नास्तिपना आने पर जो वैराग्य होता है, उसे वैराग्य कहते हैं। आहाहा! विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)